विषयानुक्रमणिका

रसगंगाधर में रस के उदाहरणों में छन्दो-विमर्श	प्रो. अर्चना दुबे	1-12
ऋतुसंहार में पृथिवी तत्त्व	डॉ. पंकज रावल	13-18
शब्दस्वरूपम्	लोकेश बोहरा	19-21
कात्यायनगृह्यसूत्रस्य परिचय:	प्रीति कंवर बारैठ	22-24
वैदिक मंत्रों की वैज्ञानिकता	डॉ. चन्द्रमणि चौहान	25-28
गीतावर्णितगुरुशिष्यसम्बन्धस्य वर्तमाने उपादेयता	ओमप्रकाश अग्रवाल:	29-33
काव्यशास्त्र	निधि अग्रवाल, डॉ. इन्दिरा गुप्ता	34-36
उपनिषदों में अद्वैतवाद	मैयड वैशाली डी.	37-40
एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम् ।।	अमृताकौर:	41-44
प्रिया, श्रेयस्करी च वाणी वक्तव्या	विकासकुमारशर्मा	45-46
शिक्षा वेदपुरुषस्य घ्राणं वा मुखं वा	डॉ. महेशचन्द्रशर्मा	47-49
वैदिकबौद्धशिक्षयो: दार्शनिकसाम्यता	अन्नपूर्णादाधीच:	50-53
संस्कृतवाङ्मये राष्ट्रभक्ति: (एकं विहङ्गमावलोकनम्)	डॉ. कुलदीपशर्मा	54-57
ह्म्यन्तक्षणेति सूत्रस्य अनुशीलनम् (वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीटीकाया: शाब्दिकलीलावत्या: अन्याभि: टीकाभिश्च सह)	किरण खींची	58-59
सहयोगात्मकाधिगम:	डॉ.प्रतिमा शर्मा	60-63
अनुप्रास अलङ्कार	डॉ. विकासशर्मा	64-67
समाजे धर्मस्य आधुनिकपरिप्रेक्ष्ये उपादेयता	अनिता अग्रवाल	68-70
साहित्यशास्त्रे रससम्प्रदाय:	अजयकुमारजैन:	71-72
स्वामी विवेकानन्द मॉडल विद्यालयों में शैक्षिकगुणवत्ता संवर्धन: चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ	किशन कुमार दाधीच	73-77
संस्कृतनाटकेषु रङ्गमञ्चीयदृष्टि:	नन्दकिशोर:	78-79

x x x

ऋतुसंहार में पृथिवी तत्त्व

डॉ॰ पंकज रावल

महाकवि कालिदास विरचित मुक्तक काव्य 'ऋतुसंहार' में परस्पर स्वतंत्र पद्यों द्वारा भारतीय षड् ऋतु चक्र के वैशिष्ट्य एवं वैविध्य का निरूपण अतीव सहज-शैली में किया है। छः सर्गों में निबद्ध इस लघु-काव्य में ग्रीष्म-वर्षा-शरत-हेमन्त-शिशिर वसन्त का क्रमवार वर्णन निगर्स चारुता से परिपूर्ण है।

यह कालिदास की प्रारम्भिक प्रथम रचना है। सुभाषितावली में वल्लभदेव द्वारा ऋतुसंहार के दो पद्यों (६/१७, २०) का कालिदास के नाम के साथ समावेश, वत्सभट्टि-कृत मन्दसौर शिलालेख (४७३ ई.) पर ऋतुसंहार की भाव-भाषा का स्पष्ट प्रभाव इत्यादि बाह्य साक्ष्यों द्वारा इसे कालिदास की कृति मानने में सहायता मिलती है।[१] परन्तु इसमें झलकते कालिदास के व्यक्तित्व एवं काव्यात्मक वैशिष्ट्य में इसकी मौलिकता प्रबलतया प्रमाणिक होती है। ऋतुसंहार में शब्द-भाव की पुनरावृत्ति का कारण कवि द्वारा अलग-अलग समय पर रचित पद्यों को बाद में ऋतु अनुसार एकीकृत करते हुए मुक्तक काव्य के रूप में प्रस्तुत करना प्रतीत होता है।[२]

इस काव्य की सहज बोधगम्यता के कारण सम्भवतः मल्लिनाथ ने इसकी टीका नहीं की।

ऋतुसंहार के अनगढ़पन, विषय-निर्वाह में सापेक्षिक असंतुलन के आधार पर इसे कालिदास की रचना स्वीकार न करना अनुचित है। अपितु इससे यह सिद्ध होता है कि कालिदास की अद्‌भुत काव्य प्रतिभा और वैचारिक परिपक्वता किसी दैवी चमत्कार या सुलभ नहीं, अनवरत अभ्यास से अर्जित कौशल का फल है। ऋतुसंहार का कलात्मक प्रस्तुतीकरण तथा प्रकृति के साथ घनिष्ठ साहचर्य-भाव इसे कालिदास-कृति सिद्ध करने में सर्वथा समर्थ है।

मानव-जीवन को प्रभावित करने वाली प्रकृति की सर्वांगीणता में ऋतुओं का उपयुक्त स्थान पहचानकर ही संस्कृत साहित्य[३] एवं काव्यशास्त्र[४] में ऋतु वर्णन को समुचित महत्त्व दिया गया है। ऋतुओं को मूल वर्ण्य विषय बनाकर ऋतु काव्य के रूप में स्वतंत्र काव्य रचना कालिदास की मौलिक सूझ है। भारत में विद्यमान ऋतुओं का यह

---

१. महर्षि वी. वी. कालिदास, पृ. ११६-११७

२. महर्षि, वी. वी. कालिदास, पृ. ११८

३. विष्णु पुराण - शरद् वर्णन ५.१०-२.१६, रामायण- हेमन्त (३.१६), वर्षा, ४.२८, शरत् ४.३०, महाभारत- वर्षाकी प्रचण्डता (वनपर्व १८२२-३, १४.३.१७-२३) शरद की सौम्यता (वनपर्व २४९.१०-१८, २८२.१-३) वसन्त की सुरम्यता (आदि १२.७-१२७ १२४.३-५) इत्यादि।

४. काव्यादर्श १.१६, अग्नि पुराण ३३७.२९ए काव्यालंकार १६.९, साहित्य दर्पण, ६.३२२ इत्यादि।

क्रमिक वर्णन भारतीय ऋतुचक्र की असाधारणता को स्पष्टतः दर्शाता है। ऋतुओं पर सम्पूर्ण काव्य रचना कवि ने पर्यावरण के जलवायविक कारकों के महत्त्व को काव्यात्मक निरूपण किया है।

पृथिवी वस्तुतः मानवेतर तत्त्वों में समाहित होती है। पृथिवी की भूमिका पूर्णतः मानवीय संवेदना से युक्त है।

''ऋतुसंहार'' में कालिदास ने पृथिवी के अनेक पयार्यवाची शब्दों का यथा- मही, भूतल, भूमयः, क्षिति, वनस्थली, भूमि, धरित्री, का उल्लेख किया है। जिसमें सर्वाधिक मही, भूतल, भूमयः, भूमि शब्द का उल्लेख हुआ है।

प्रथम सर्ग में महाकवि कालिदास प्रियतमा के वियोग रूपी अग्नि से जले हुए मनुष्य की तुलना ग्रीष्म ऋतु में पड़ने वाली सूर्य किरणों से जली हुई पृथ्वी से की है-

असह्यवातोद्धतरेणुमण्डला प्रचण्डसूर्यातयतापिता मही।

न शक्यते द्रष्टुमपि प्रवासिभिः प्रियावियोगाजलदग्धमानसैः।।[५]

प्रस्तुत पद्य में कालिदास ने पृथ्वी के लिए मही शब्द का प्रयोग किया है।

इसी प्रकार कालिदास ने ग्रीष्मकालीन ताप से पीड़ित शूकरों द्वारा सूखें हुए तालाब को खोदते हुए धरातल में प्रवेश करे हुए शूकरों का वर्णन किया है-

सभद्रमुस्तं परिशुष्ककर्दमं सरः श्वनन्नायतपोतृमण्डलैः।

श्वैर्मयूरवैरभितादितो भृशं वराहयूथो विशतीव भूतलम्।।[६]

इस प्रकार कवि ने पृथिवी के लिए भूतल शब्द का प्रयोग किया है। प्रथम सर्ग में ही कालिदास ने पृथिवी के लिए भूमयः शब्द का प्रयोग किया है-

विकचनवकुसुम्भस्वच्छसिन्दूरभासा प्रबल पवन वेगोद्भूतवेगेन तूर्णम्।

तटविटपलताग्रालिङ्गनव्याकुलेन दिशि-दिशिपिरिदग्धा भूमयः पावकेन।।[७]

यहाँ कवि ने दावाग्नि के ग्रीष्मकालीन प्रचण्ड प्रभाव से पृथिवी को झुलसाने वाले रूप का वर्णन किया है।

द्वितीय सर्ग में महाकवि कालिदास ने पृथिवी के लिए क्षिति शब्द का प्रयोग किया है। वर्षाकाल में इन्द्रधूटियों से परिपूर्ण पृथिवी को सजी-धजी वेश्या के समान वर्णित है।

प्रभिन्नवैदूर्यनिभैस्तृणाङ्कुरैः समाचिता प्रोत्थितकन्दलीदलैः।

विभति शुक्लेतररत्नभूषिता वाराङ्गनेव क्षितिरिन्द्रगोपकैः।।[८]

---

५. ऋतुसंहार - व्याख्याकार प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी, सर्ग सं. प्रथम, श्लोक-१

६. अथर्ववेद, ७/६/१, पृ. सं. २२

७. ऋतुसंहार १.२४

८. ऋतुसंहार २/५

तृतीय सर्ग में महाकवि कालिदास ने कमल के समान विशाल तथा चंचल नेत्रों व सुन्दर मुख वाले मृगों से सुशोभित पृथिवी का वर्णन किया है-

विलोलनेत्रोत्पलशोभिताननैर्मृगैः समन्तादुपजातसाध्वसैः।

समाचिता सैकतिनी वनस्थली समुत्सुकत्वं प्रकरोति चेतसः।।[९]

यहाँ कवि ने पृथिवी के लिए वनस्थली शब्द का प्रयोग किया है।

तृतीय सर्ग में कालिदास ने शरद् ऋतु में काशपुष्पों से पृथ्वी को उज्जवल किये जाने का उल्लेख किया है-

काशैर्मही शिशिरदीधितिना रजन्यो हंसैर्जलानि सरितां कुमुदैः सरांसि।

सप्तच्छेदैः कुसुमभारनतैर्वनान्ताः शुक्लीकृतान्युपवनानि च मालतीभिः।।[१०]

यहाँ कवि ने पृथ्वी के लिए मही शब्द का प्रयोग किया है।

कालिदास ने शरद्ऋतु में युवकों के मन को उल्लासित करने वाली काजल की राशि के समान कमनीय कान्ति वाले नीलाकश बन्धूक पुष्पों से लालिमामयी पृथ्वी पके हुए धानों से आकृत-भू-भाग, श्वेत और मिट्टी के टीलों का वर्णन किया है-

भिन्नाञ्जनप्रचयकान्ति नभो मनोज्ञं

बन्धूकपुष्परचितारूणता च भूमिः।

वप्राश्चचारूकमलावृतभूमिभागः

प्रोत्कण्ठयन्ति न मनो भुवि कस्य युनः।।[११]

यहाँ कालिदास ने पृथ्वी के लिए भूमि शब्द का प्रयोग किया है।

तृतीय सर्ग में ही कालिदास ने शरद् ऋतु में लहलाते धानों के खेतों, सुस्थिर गायों तथा सारसों के समूहों से युक्त गुञ्जायमान प्रदेश का उल्लेख किया गया है-

सम्पन्नशालिनिचयावृतभूतलानि स्वस्थस्थितप्रचुरगोकुलशोभितानि।

हंसैससारसकुलैः प्रतिनादितानि सीमान्तराणि जनयन्ति नृणां प्रमोदम्।।[१२]

यहाँ महाकवि ने पृथ्वी के लिए भूतल शब्द का प्रयोग किया है।

षष्ठ सर्ग में महाकवि कालिदास वसन्त ऋतु में पलाश के बनों से पूरी तरह आवेष्टित पृथिवी लाल कपडे पहने हुए नयी बहू के समान सुशोभित हो रही है। इसी का वर्णन कर रहे है-

---

९. ऋतुसंहार २/९

१०. ऋतुसंहार ३/२

११. ऋतुसंहार ३/५

१२. ऋतुसंहार ३/१६

आदीप्तवह्नि सदृशैर्मरूता वधूतैः सर्वत्र किंशुकवनैः कुसमावनम्रैः।

सद्यो वसन्तसमये हि समाचितयं रक्तांशुका नवधूरिव भाति भूमिः।।[१३]

यहाँ महाकवि ने पृथिवी के लिए भूमि शब्द का प्रयोग किया है।

तृतीय सर्ग में महाकवि ने पृथिवी के लिए धारित्री शब्द का प्रयोग किया है-

शरदि कुमुदसङ्गाद्वावयो वान्ति शीता

विगतजला वृन्दा दिग्विभागा मनोज्ञाः।

विगतकलुषम्भः शानपङ्का धरित्री

विमलकिरणचन्द्रं व्योमताराविचित्रम्।।[१४]

यहाँ महाकवि ने शरत्कालीन प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन किया है। शरद् ऋतु में पृथिवी कीचड़ से रहित हो जाती है। इस श्लोक में महाकवि ने पृथिवी, जल, वायु, आकाश, इन चारों का एक साथ वर्णन किया है। क्योंकि शरद् ऋतु में पुष्पों के सम्पर्क से शीतल हवा चलती है। जल कलुषता से रहित हो जाने पर स्वच्छ हो गया है। पृथिवी पङ्क रहित हो गयी है। आकाश निर्मल चन्द्रमा किरणों एवं तारों से मनोहर लगता है।

इस प्रकार कालिदास ने ऋतुसंहार में पृथिवी के पर्यायवाची मही, भूतल, भूमि, क्षिति, वनस्थली, धारित्री शब्द का प्रयोग किया है। कोई पदार्थ जिसका उपयोग सम्पत्ति निर्माण में किया जाए अथवा जो संतुष्टि प्रदान करें, संसाधन कहलाता है।

कालिदास ने ऋतुसंहार में अनेक संसाधनों का यथा- पर्वत, वृक्ष, पुष्प इत्यादि का वर्णन पृथिवी के संसाधनों के रूप में किया है।

पर्वत - भौतिक भूगोल की दृष्टि से देखा जाए तो भू संरचना में पर्वत सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होने के कारण अपना प्रमुखतया स्थान रखते हैं। कॉलिदास ने विंध्याचल पर्वत का वर्णन किया है। महोच्च यह विन्ध्याचल पर्वत जल के भार से विनम्र सभी बादलों के

आश्रयदाता है। इस विचार से पानी के भार से झुके हुए बादल अत्यन्त उग्र ग्रीष्मकालीन अग्नि की ज्वाला से सन्तापित विन्ध्याचल को मानो जल वर्षा से आनन्दित कर रहे हैं।

जलभरनामितानामाश्रयोऽस्मकामुच्चैर-

यामीत जलसेकैस्तोदयास्तोयनम्राः।

अतिशय परुषाभिर्ग्रीष्मवह्नेः शिरवाभिः

समुपजनिततापं ह्लादयन्तीव विन्ध्यम्।।[१५]

---

१३. ऋतुसंहार- ६/१९

१४. ऋतुसंहार - ३/२२

१५. ऋतुसंहार - व्याख्याकार- डॉ. रविकान्त मणि, द्वितीय सर्ग श्लोक संख्या २८

यहाँ कालिदास ने प्रकृति में निहित परस्परोपकार को प्रकट किया है। विंन्ध्याचल जल भार से झुके मेघों को सहारा देता है और मेघ पर्वत की ग्रीष्म जनित दावाग्नि को शान्त करने के लिए उस पर जल बरसाते हैं। पर्वत और मेघ का अन्यायेन्याश्रयित्व कवि कल्पित नहीं, अपितु पर्यावरणीय यथार्थ है।

वनस्पति - वैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा सुप्रमाणित है कि जीव-जन्तुओं में आकार तथा संरचना का विभेद होते हुए भी समस्त वनस्पति में जीवोचित जैविक क्रियाएँ होती हैं।[१६] अतः हमारी पृथ्वी पर जल-थल में विकसित होने वाली अगणित वनस्पति जातियों को जीव-जगत् में सम्मिलित किया गया है। जैविक कारकों के अन्तर्गत वनस्पति अन्य पर्यावरण-कारकों तथा जीवों को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले जीव हैं। वृक्ष-लता, पादप-झाड़ी, घास, जलीय पादपादि अपनी सभी प्रक्रियाओं और पर्ण पुष्प, शाखा-मूल, बीज-फल इत्यादि सभी अंगों द्वारा पर्यावरण को बहुत लाभान्वित करते हैं। हरित पादप में क्लोरोफिल नामक पदार्थ होता है, जिससे वे सूर्य के प्रकाश में वायुमण्डल से कार्बन डाई ऑक्साईड और भूमि से जल ग्रहण कर प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया द्वारा कार्बोहाइड्रेट्स के रूप में भोज्य पदार्थ बनाते हैं तथा ऑक्सीजन का उत्सर्जन करते हैं इसके विपरीत रात्रि में ऑक्सीजन ग्रहण कर कार्बन डाई ऑक्साइड वातावरण में छोड़ते हैं। इस प्रकार ये प्राणियों के प्राणवायु के प्रदाता तथा ऑक्सीजन-कार्बन डाई ऑक्साइड जैसी महत्त्वपूर्ण गैसों का वायुमण्डल में संतुलन बनाए रखने के एकमात्र साधन हैं।

मानव सहित सभी जीवों की जीवनोपयोगी भोजन सामग्री की प्राप्ति का मूल स्रोत वनस्पति ही है। सभी भोजन-शृङ्खलाओं का आरम्भ वनस्पति से होता है। मृदा में व्याप्त खनिज तत्त्व, नाइट्रोजनादि पोषक तत्त्व, प्रोटी-विटामिन-कार्बोहाइड्रेट्स इत्यादि तत्त्व शाकाहारी जीवन प्रत्यक्षतः तथा माँसाहारी जीव अप्रत्यक्षतः वनस्पति से ही प्राप्त करते हैं। सूर्य-प्रदत्त ऊर्जा को खाद्य पदार्थों के रूप में जीवों का वनस्पति ही पहुँचाती है।

वनस्पति की अन्य महत्त्वपूर्ण क्रिया है- वाष्पोत्सर्जन। मृदा से जड़ों द्वारा गृहीत जल को पत्तियों के सूक्ष्म छिद्रों से उत्सर्जित करने की इस क्रिया द्वारा वायुमण्डलीय आर्द्रता बनी रहती है। छायादार एवं आर्द्रदायक वृक्ष-समूह के समीपस्थ तापमान में ५° सेन्टीग्रेड तक कमी हो सकती है। वानस्पतिक आर्द्रता वर्षा के लिए अनुकूलता प्रदान करती है। क्योंकि शीतल आर्द्र वायु के सम्पर्क में मेघकण शीघ्र संघनित होकर बरसने लगते हैं।

वृक्ष-पादप ही नहीं, छोटी-छोटी घास भी अपनी जड़ों से वर्षा जल की तीव्र प्रवाह में अवरोध करते हुए भूमि की अन्तः स्रवण क्षमता की वृद्धि करती है। फलतः मृदीय आर्द्रता की रक्षा, भूगर्भीय जल भण्डार में वृद्धि होती है। जड़ों की जल शोधन क्षमता यथा (यथा- आँवला वृक्ष) भूमिगत जल की शुद्धि में सहायक होती है। वनस्पति मृदा-संरक्षण का प्रभावशाली उपाय है। तीव्र वायु प्रवाह के अवरोधक बनकर, वेगपूर्ण जल प्रवाह को मंद बनाकर मृदा क्षरण की रोकथाम करने से तथा मृदाजीवों के लिए अनुकूलता प्रदान करने से, वानस्पतिक मृतावशेष प्रदान कर उत्तम उर्वरक बनने का साधन जुटाने से पेड़-पौधे मृदा की पोषकता में सहायक सिद्ध होते हैं।

सभी प्रकार के जीवों के आश्रय स्थल के लिए वनस्पति किसी न किसी प्रकार अवश्य उपयोगी है। वनस्पति ईंधन, ईमारती लकड़ी, पशु-चारा, वस्त्र, औषधि आदि के मानवोपयोगी संसाधन है। मनुष्य ने कृषि द्वारा

---

१६. Mishra KC, Manual of Plant Ecology, P. 91

इन पर नियंत्रण भी पाया है। अपने बहुविध प्रयोजनों की सिद्धि के लिए उनके प्रत्येक अंग, प्रत्येक प्रजाति एवं प्रत्येक समूह (वन-उपवन-कृषिक्षेत्रादि) का उपयोग करने का मनुष्य अभ्यस्त हो गया है।[१७]

वनस्पति अन्य पर्यावरण कारकों से प्रभावित होती है। सौर प्रकाश प्रकाश-संश्लेषण के लिए, तापमान-आर्द्रता वाष्पोत्सर्जन की मात्रा निश्चित करने के लिए, वर्षा जल का भूमिगत जल पोषण के लिए, मृदा स्थायित्व और पोषण के लिए, वायुमण्डल- जैविक क्रियाओं में उपयोगी गैसें प्राप्त करने के लिए वनस्पति की अनिवार्य आवश्यकताएँ। हैं। स्थानविशेष के अक्षांश ऊँचाई, पर्वतीय ढाल आदि के आधार पर वहाँ की जलवायु और मृदा प्रकार नियत होने के कारण तत्रस्थ वनस्पति प्रकारों में भिन्नता पाई जाती है। प्रत्येक वनस्पति प्रकार की ताप एवं आर्द्रता सहन करने की अधिकतम न्यूनतम सीमा निश्चित होती है। यथा- उष्ण अति आर्द्र क्षेत्रों में वर्षावन, अपेक्षाकृत कम आर्द्रता में मानसूनी पर्णपाती वन, उष्ण शुष्क प्रदेशों में घासवन या मरुस्थलीय वनस्पति, शीत-आर्द्र-क्षेत्रों मं शंकुधारी वन, शीत-शुष्क क्षेत्रों में टुण्ड्रा (छोटे पौधे, घास) नित्य हिमावरण क्षेत्रों में वनस्पति का अभाव।[१८]

वनस्पति के लिए प्राणी अत्यन्त पर्यावरण कारक है। पशु-पक्षियों की चराई, टिड्डे-दीमक जैसे कीटों, वनस्पतिक नाशक जीवाणुओं का वनस्पति विकास पर प्रत्यक्षतया प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। भ्रमर-तितली आदि कीट परागण में और पशु पक्षी प्रकीर्णन में सहायक होते हैं। जीव-जन्तुओं के अवशिष्ट खाद के रूप में पोषण प्रदान करते है। केचुए जैसे छोटे जीव भी मृदीय उर्वरता-वृद्धि द्वारा प्रकारान्तर से वनस्पति वृद्धि करते हैं। पर्यावरण के सर्वोपभोगी सदस्य के रूप में मानव वनस्पति के विनाश और संरक्षण दोनों ही दृष्टिकोण से प्रभावशाली है।

पुराण संकायाध्यक्ष
श्रीसोमनाथसंस्कृतविश्वविद्यालयः
वेरावल, गुजरात

---

१७. A world Geography of Forest Resources.
Ed. for the American. Geo. Society, P. 49-52

१८. कोछर पी. एल. पादप पारिस्थितिकी, पृ. ५०-५१